
Prapannakalpadrumah

प्रपन्नकल्पद्रुमः

Document Information

Text title : Prapannakalpadrumah
File name : prapannakalpadrumaH.itx
Category : raama, rAmAnanda, shataka
Location : doc_raama
Author : bhagavadAchArya
Proofread by : Mrityunjay Pandey
Latest update : February 16, 2024
Send corrections to : sanskrit at cheerful dot c om

This text is prepared by volunteers and is to be used for personal study and research. The file is not to be copied or reposted without permission, for promotion of any website or individuals or for commercial purpose.

Please help to maintain respect for volunteer spirit.

Please note that proofreading is done using Devanagari version and other language/scripts are generated using **sanscript**.

February 16, 2024

sanskritdocuments.org

Prapannakalpadrumah

પ્રપન્નકલ્પદ્રુમઃ



શ્રીજાનકીજાનિમુદારવૃત્તં શ્રિયા સમેતં શ્રિતકલ્પવૃક્ષમ્ ।
લલામસાકેતમહાલયં તં રઘૂત્તમં રામમહં સ્મરામિ ॥ ૧ ॥

ઉદારચરિતવાલે, સુન્દરસાકેતનિવાસી, કલ્પવૃક્ષ કે નીચે વિરાજમાન, જાનકીસહિત રાઘવેન્દ્ર જાનકીનાથ શ્રીરામજી
કો મૈં નિરન્તર સ્મરણ કરતા હૂં ॥ ૧ ॥

મુનીન્દ્રશાપાદ્ દુરપલ્લવાત્સા શિલાત્વમેતા મુનિરાજપત્ની ।
યદીયપાદાભ્જરજઃ પ્રભાવાન્નમામિ તં પ્રાપ તનું સુભદ્રામ્ ॥ ૨ ॥

ગૌતમ મુનિ કે અનિવાર્ય શાપ સે શિલાભાવ કો પ્રાપ હુઈ અહલ્યા ને જિનકે ચરણકમલ કે રજ કે પ્રભાવ સે
કલ્યાણમય શરીર કો પ્રાપ કિયા ઉન્હી શ્રીરામ કો મૈં નમસ્કાર કરતા હૂં ॥ ૨ ॥

સદા દરિદ્રે દ્રવતઃ સ્વદાસાન્ કૃપાકટાક્ષાદ્ દ્રવતો દયાલો ।
કદા નુ પઙ્કેરુહપાદધૂલિ કણં તવાહં શિરસા સ્પૃશાનિ ॥ ૩ ॥

હે દયાલો ! દરિદ્રોં પર સર્વદા દયા કરનેવાલે, નિજ જનોં કી સદા કૃપાકટાક્ષ સે રક્ષા કરને વાલે આપકે ચરણકમલ
કી ધૂરિ કે કણ કો મૈં કબ શિર સે સ્પર્શ કરુંગા ॥ ૩ ॥

નિદર્શ્ય યન્નાથ નિજં કટાક્ષં વિદેહપુર્યામપિલા મહેલાઃ ।
વિદેહતાં ત્વં ગમયાઞ્ચકર્થ કદા ગતઃ સ્યાં પથિતસ્ય તૂર્ણમ્ ॥ ૪ ॥

હે નાથ ! આપને શ્રીજનકપુર મેં સમસ્ત મહિલાઓં કો અપને જિસ કટાક્ષ કો દિખાકર વિદેહ બના દિયા થા ઉસી
કટાક્ષ કે માર્ગ મેં મૈં કબ શીઘ્ર આઊંગા ? અર્થાત્ આપ કૃપા કટાક્ષ સે મુઝે કબ દેખેંગે ॥ ૪ ॥

ત્વદ્ભક્તિગડ્ગાલહરીસહસ્ત્રૈઃ સમુક્ષિતો નાથ કદા ભવામિ ॥
ત્રિતાપતાપાદયુતઃ પરેશ ! શ્વસન્હુઃ સ્વસ્થતમસ્તવાહમ્ ॥ ૫ ॥

હે નાથ ! હે પરેશ ! આપકા દાસ મૈં આપકી ભક્તિ ભાગીરથી કી અનન્ત લહરિયોં સે સીંચા ગયા હુઆ, સંસાર
કે તીનોં તાપોં સે પૃથક્ ડોકર શ્વાસ લેતા હુઆ પુનઃ કબ અત્યન્ત શાન્ત બનૂંગા ॥ ૫ ॥

મુનીન્દ્ર વૃન્દારકવૃન્દવન્દ્ય પ્રકુલ્લપાયો જપદદ્યયે તે ।
જગદ્ગનેસમ્ભ્રમિજાગરાર્તાં પ્રભો જનં સ્વાપય નિર્ભરં મામ્ ॥ ૬ ॥

हे प्रभो ! संसाररूपं जङ्गलं मे भ्रमणं करने के कारणे जागरणं से दुःखितं मुझे दास को आप परमश्रेष्ठ मुनियों के वृन्द से वन्दनीय तथा विकसितकमलसमान अपने यरणयुगलं मे अत्यन्त गाढः निद्रा से सोने दीजिये ॥ ६ ॥

जागर्तुं वीज्या यदि वीक्ष्य देव ! यथं त्वदीये हृदि मेऽहसां तत् ।
त्वमेव मां निर्दिश कान्दिशीको व्रजामि कस्याद्य पुरः शरण्य ॥ ७ ॥

हे दिव्यगुणयुक्त भगवन् ! यदि मेरे अपराधों के समूह को दृष्टकर आपके भी हृदय मे घृणा उत्पन्न होती हो तो हे शरण्य ! आप ही मुझे कहे, उपायहीन मैं आज किसके आगे जाऊँ ? ॥ ७ ॥

दुरन्तदुष्प्रेक्ष्यमडास्त्रवाभ्यिकल्लोलसंलोलितमानसोऽहम् ।
अनाथसन्नाथ गतिं त्वदन्यां पश्यामि न क्वापि जगच्छरण्य ॥ ८ ॥

हे अनार्थों के परमश्रेष्ठ नाथ ! हे जगन्नाथ के शरण्य ! दुरन्त और दुर्दर्शनीय मडादुःख स्वरूप समुद्र के कल्लोलों से व्याकुल चित्तवाला मैं आपके अतिरिक्त अन्य को ही गति नहीं देखता हूँ ॥ ८ ॥

निरन्तरावृद्धमडाज्ञातादुःक्षपाक्षिपां नाथ विधाय सद्यः ।
प्रदेहि मे त्वं ज्यनपायिनीं स्वां प्रपत्तिमानन्दरसप्रपूर्णां ॥ ९ ॥

हे नाथ ! निरन्तर यारों ओर से बढ़ती हुई अज्ञानतरुण दृष्ट रात्रि का शीघ्र नाश करके अविनाशिनी तथा आनन्दरस से परिपूर्णा अपनी प्रपत्ति को मुझे प्रदान करिये ॥ ९ ॥

तवात्र यत्यादपुनर्भवोत्था पुनाति लोकान्भिलान् हि गङ्गा ।
पुनर्भवः सैष पुनर्भवं मे धुनोतु नाथास्ति ममेति याञ्चा ॥ १० ॥

हे नाथ ! मेरी छतनी ही भिक्षा है कि आपके जिस यरणनभ से उत्पन्न होकर श्रीगङ्गाजी इस पृथ्वी पर समस्त जनों को पवित्र कर रही हैं वही यरणनभ मेरे पुनः पुनः आगमन को जन्म-मरण को नष्ट कर दे ॥ १० ॥

यतः प्रवृत्ता विमलोदका धुनी द्विवौकसां शीतलयत्यहर्निशम् ॥
भवानलोत्तमजनुष्मती नवौषधीशशोभो नभरः पुनातु माम् ॥ ११ ॥

जिस नभ से पवित्र सलिला गङ्गाजी निकलकर संसाररूप अग्नि से विद्यग्ध प्राणियों को सर्वदा शीतल कर रही हैं वही नवीनयन्त्र समान नभ मुझे पवित्र करे ॥ ११ ॥

तवाधिनाम प्रथते मलौषधं जनस्ययस्यैव मनस्यहर्दिवम् ।
न तत्समीपे रघुनाथ कर्त्तियिद्विपत्पदाप्येति किमित्यतिक्रमः ॥ १२ ॥

हे श्रीरघुनाथजी ! आपका परम पवित्रनामरूप मलौषधि रात्रिन्दिव जिसके मन में निवास करती है उसके पास विपत्ति अेक पल भी नहीं आती परन्तु आज यह विपरीत क्यों हो रहा है ? ॥ १२ ॥

त्वमन्याये तरणोः श्रियः पते ज्यसि प्रसिद्धस्तरणिर्जगत्त्रये
कथं तवाभ्यर्णमुपेत्य सम्प्रति प्रभो विषीदामि तमस्तमीयये ॥ १३ ॥

हे श्रीपते ! तीनों लोक में प्रसिद्धि है कि आप सूर्यवंश में सूर्य हैं । तब हे प्रभो ! आपके पास आकर भी मैं अन्धकारपूर्णा रात्रि में क्यो भिन्न हो रहा हूँ ? ॥ १३ ॥

भवार्णवि सम्पतितस्य भीषणो निराश्रयस्यास्य जनस्य तारण ।
 दयानिधे विद्रुत ओषि साम्प्रतं भवाद्य सद्यस्तरणिर्दृढाऽव्यया ॥ १४ ॥

हे दयानिधे ! इस भयङ्कर भवसागर में पड़े हुए इस निराश्रय दीन जन को तारने के लिये आप दयार्द्र हृदयवाले अनिये और शीघ्र दृढ तथा अविनाशिनी नौका बन जाइये ॥ १४ ॥

मनश्च मे मत्त मतऽगुजोपमं भ्रमत्यजस्रं बहुधा शठे पथि
 जगन्नियन्तस्तव पादपद्भुजे वार्यो हि अम्भोजचरणो तरस्यि तत् ॥ १५ ॥

हे समस्त जगत के नियमन करनेवाले ! मेरा मन मतवाला छाथी समान सदा दृष्ट मार्ग में भ्रमण करता रहता है । आप इस बड़े बलवाले मनरूप गज को अपने चरण कमलरूप भुंटे में बाध दीजिये ॥ १५ ॥

जपस्तपः कोपि विधीयतां जनैः परं जगन्नाथ मया तु निश्चितम् ।
 उदेतु येन्नैव कृपा जनेषु ते त्रितापडानिर्मुगत्षिण्डिका परम् ॥ १६ ॥

हे जगन्नाथ ! मनुष्य चाहे कोई जप करे या तप करे परन्तु मैंने तो निश्चय कर लिया है कि जब तक जनों के ऊपर आपकी दया नहीं होती तब तक त्रिविध दुःख की निवृत्ति केवल मृग-तृष्णा है ॥ १६ ॥

प्रपञ्च पञ्चानन ओष तिष्ठति प्रपञ्च दंष्ट्राविषमं मुष्णं निजम् ।
 अनन्तशक्ते त्वदन्ते कथञ्चन क्षमो य कोपीड विरक्षितुं परः ॥ १७ ॥

हे अनन्त शक्तिवाले प्रभो ! यह प्रपञ्चरूप पञ्चानन सिंह अपने भयङ्कर मुष्ण को डैलाकर बैठा हुआ है । आपके अतिरिक्त और कोई भी इस समय रक्षण करने में समर्थ नहीं है ॥ १७ ॥

किञ्चिच्चिरं मे परिद्वेवनं विभो न नेष्यसि श्रोत्रपथं दयानिधे ।
 अथायमप्यस्ति तु कापि डेलिका उत्तोस्मि डेलि प्रियदुःमितस्तदा ॥ १८ ॥

हे विभो ! कब तक मेरे रुदन को आप न सुनेंगे ! हे दयानिधे ! क्या मेरे रुदन को न सुनना भी आपकी कोई डीडा है ? यहि ऐसा है तो हे डीडा के प्रेमी प्रभो मैं गरीब तो मारा गया ! ॥ १८ ॥

यदि स्वयं त्वं गणयिष्यसि प्रभो सुसञ्चितान्भेऽपरिमेय दूर्गुणान्
 कथञ्चिद्यथत्र न पारयिष्यसि श्रमो वृथा ते भविता प्रियोत्तम ! ॥ १९ ॥

हे प्रभो ! यदि आप स्वयं मेरे सञ्चित अनन्त दूर्गुणों को गिनने बैठें तो आप कभी इसका पार न पावेंगे और हे परमप्रिय नाथ ! आपको व्यर्थ मैं श्रम डोगा ॥ १९ ॥

विडाय सर्वं जगदेकवैभवं विचारयातुर्थ्यमूं य सन्त्यजन् ।

अयं जनस्त्वय्यरणं प्रपन्नवान्विधे छि तद्यच्च विभातु ते शिवम् ॥ २० ॥

संसार डे समस्त उत्तम वैभवों को छोडकर विचार की यतुराई को भी छोडकर ले नाथ ! यड दास आपडे चरणों में प्राम डुआ है । आपको जो अच्छा लगे सो करिये ॥ २० ॥

वदामि सत्यं पुरुषोत्तमाडं सनाथयिष्यस्थ नो जनं स्वम् ।

तदा प्रसिद्धा तव नाथता साडवशाडकृतार्था भविताडकृलाड्या ॥ २१ ॥

डे पुरुषोत्तम ! मै सत्य कडता डूँ - यहि आप अपने जनको सनाथ न करेंगे तो आपकी प्रसिद्ध स्वामिता विवश डोकर अकृतार्थ तथा निष्कल डो जावेगी ॥ २१ ॥

न मादृशं येत्ववितुं प्रवृत्तिस्तदा तु ते डिडिडिम अेषकः कः ।

जगत्समग्रस्य शिवाय नित्यं प्रयत्नवान् राघव धत्यनल्पः ॥ २२ ॥

डे प्रभो ! यहि मेरे जैसे को पवित्र करने डे लिये आपकी प्रवृत्ति नहीं है तो यड बडःा भारी डिडिडिम ड्यों बज रडा है डि श्रीराघव समस्त जगत् डे कल्याण डे लिये प्रयत्नशील है ॥ २२ ॥

कथं परीक्षया त्वयि संस्थिता या जगत्पवित्री तव शक्तिरेषा ।

न यावदस्मिन्नघिनि प्रयुक्ता कषे छि सा काञ्चन शुद्ध तेक्षया ॥ २३ ॥

जगत् को पवित्र करनेवाली जो शक्ति आप में स्थित है उसकी परीक्षा तब तक कैसे डो, जबतक डि उसे आप मेरे जैसे पापी में प्रयुक्त न करें । ड्योंकि सोने की परीक्षा तो कसौटी पर डी डोती है ॥ २३ ॥

अघान्चनन्तानि मडान्ति नाथ ! न येन्मयि स्युः कथमित्यमार्तः ।

स्थितस्तव द्वारि समश्रुनेत्रः प्रकृल्लराजुवलोचन स्याम् ॥ २४ ॥

डे विकसितकमलसमान नेत्रवाले प्रभो ! यहि मुजमें बडःे- बडःे अनन्त पाप न डोते तो मै ँस प्रकार आर्त बनकर, रोता डुआ आपडे द्वार पर ड्यों ञःा रडता ? ॥ २४ ॥

विश्वम्भरश्चेदसि वस्तुतस्तवं विश्वानि पापानि मया कृतानि ।

विस्मृत्य विश्वम्भर मां भरस्व स्वनामयाथार्थमथो भरस्व ॥ २५ ॥

डे विश्वम्भर ! यहि आप वस्तुतः विश्वम्भर है तो मेरे डिये डुअे समस्त पापों को भूलकर मेरा रक्षाण करिये और अपने नाम की यथार्थता को धारण कीजिये ॥ २५ ॥

त्वदीय सौन्दर्यं मडापयोधौ निमज्ज्य यात्मानमपास्य नाथ ! ।

त्वयैक्यमेवं भजतः प्रभो मे कदा प्रयास्यन्ति शुभान्चडानि ॥ २६ ॥

डे नाथ ! आपडे सौन्दर्य सागर में डूबकर, अपने को भूलकर आपडे साथ अैक्य को धारण करते डुअे मेरे शुभ दिवस कब व्यतीत डोंगे ? ॥ २६ ॥

कदा तवैवाङ्घ्रिसरोजयुग्मे विलाप्य वृत्तीर्मनसोऽपिला मे ।

जगज्य छित्वा जगदेक देव लयोत्सुभस्वासुधां स्वदिष्ये ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! आपके ही यरएकमलों में अपनी मानसिक वृत्तियों का लय करके संसार को त्यागकर संसार के एक मात्र देव ! आपके साथ सायुज्य सुभरूप स्वादु-सुधा का मैं कब आस्वादन करूँगा ? ॥ २७ ॥

मडामुनी-द्वैरपि दुर्लभं यद्भवत्पदाब्जस्मलितं कदा तत् ।

समुत्सुको नाथ रजो नतेन प्रयुभ्य मूर्ध्ना सुकृती भवेयम् ॥ २८ ॥

हे नाथ ! बड-े-बड-े मुनियों के लिये भी जो दुर्लभ है उस आपके यरएकमल से स्मलित रज को अवनत मस्तक से यूमकर मैं कब कृतार्थ होऊँगा ॥ २८ ॥

गजेन्द्रमोक्षाय कृता त्वरा या प्रपन्नसन्तान तु तां निरीक्ष्य ।

उपायहीनोऽतिशयेन दीनो जनः प्रभो त्वां ! शरणां प्रपन्नः ॥ २९ ॥

हे प्रपन्नकल्पतरो ! गजेन्द्रमोक्ष के समय जो शीघ्रता आपने की थी उसे ही देखकर अन्य उपायों से हीन, अत्यन्त हीनजन मैं आपकी शरणा में प्राप्त हुआ हूँ ॥ २९ ॥

प्रत्यादिशद्दानुगुणाय वा मां जगन्निवासासि निरङ्कुशस्त्वम् ।

तवैव शोभा भजतां सुवृद्धि यथा तथा नाथ कुरुष्व शीघ्रम् ॥ ३० ॥

हे जगन्निवास ! आप याहे मेरा तिरस्कार करें याहे मेरे आपर अनुग्रह करें । आप स्वतन्त्र हैं । आपकी ही शोभा जैसे बढ-े, हे नाथ ! शीघ्र वैसा करें ॥ ३० ॥

छंद धनुश्रौष शरोऽसिरेष प्रपन्नरक्षाकरणाय नित्यम् ।

त्वया विभो सन्म्रियते सदैव मद्बुद्धतौ को नु विलम्बहेतुः ? ॥

हे विभो ! आप प्रपन्न की रक्षा के लिये ही धनुष, बाण और ञ्ग सदा धारण करते हैं । तब हे नाथ ! मेरे उद्धार में विलम्ब का क्या हेतु है ? ॥ ३१ ॥

तवैव नामामृतसिन्धुभिन्दुं पिबन्नरो नैव निपीज्यतेऽत्र ।

श्रुतं मयैतत्किमिति प्रभो तत्तवाश्रितो दृःभभरे प्रवीक्षे ॥ ३२ ॥

हे नाथ ! आप के नामरूप अमृतसिन्धु के बिन्दु का भी पान करता हुआ पुरुष इस संसार में पीडित नहीं होता, यह मैंने सुना था । तब हे प्रभो ! यह आपका आश्रय लेने वाला मैं क्यों दृःभों का समूह देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥

अये प्रभो येच्छरणागतं मां निराश्रितो निस्स्वमुपायशून्यम् ।

उपेक्षसे तर्हि जगत्रयेऽपि कथं परीवाह उदेतु नो ते ॥ ३३ ॥

हे प्रभो ! यदि निराश्रित, निर्धन और उपायशून्य तथा शरण में आये हुआ मेरे जैसे जन की आप उपेक्षा करेंगे तो तीनों लोको में क्यों न आपकी अपकीर्ति हो ? ॥ ३ ॥

त्वमेव वात्सल्यरसप्रपूर्णा कृपानिधे दीनजनस्य मेऽसि ।
आनन्दभूमिर्जननी कथं त्वां विहाय गच्छानि निराकृतोऽपि ॥ ३४ ॥

हे कृपानिधे ! मुझ दीन जन की वात्सल्य रस से पूर्णा आनन्द की भूमि, आप ही माता हैं । अतः हे नाथ ! आप से तिरस्कृत होकर भी आपको छोड़कर कैसे जाऊँ ? ॥ ३४ ॥

प्रवालयन्तं नयनाम्बुराशि कथं समुद्धर्तुमिमं जनं भोः ।
उदेतु नाथावधि तावकीना मतिर्न वा स्यां विङ्गलो ह्यदश्रुः ॥ ३५ ॥

हे प्रभो ! आँधों से आँसुओं को बहाते हुआ इस जन के उद्धार करने के लिये अभी तक आपका विचार क्यों नहीं होता है ? क्या समयभय रोता हुआ मैं निष्कल ही तो नहीं रहूँगा ? ॥ ३५ ॥

जानामि नो नाथ जपं तपो वा समाधिमुद्रां न य भक्तिभावम् ।
न धर्मतत्त्वं न य कर्मतत्त्वं त्वं हि भवाब्धेर्भव भव्यनौर्मे ॥ ३६ ॥

हे नाथ ! मैं जप, तप, समाधि अथवा भक्तिभाव तथा धर्मतत्त्व और कर्मतत्त्व आदि कुछ नहीं जानता हूँ । अतः इस संसारसागर के लिये आप मेरी सुन्दर नौका बन जावें ॥ ३६ ॥

व्रजन्ति केचित्तव धाम योगतस्तथा य भक्त्या व्यभियारशून्यया ।
अहं तु दीनो विदधामि राधव ! त्वदीयनामस्मरणाधिरोहणीम् ॥ ३७ ॥

हे श्रीराधव ! कोई तो योग के द्वारा आपके धाम में पहुँचते हैं और कोई अव्यभियारिणी भक्ति के द्वारा वहाँ प्राप्त होते हैं । परन्तु मैं दीन तो वहाँ पहुँचने के लिये आपका नामस्मरण रूप सीढी बना रहा हूँ ॥ ३७ ॥

अथापि नो तारयितुं समीहसे जिघृक्षया कस्यचनापि वस्तुनः ।
प्रसिद्धनिस्स्वो वितरामि किन्तु ते गृहाण तुच्छं लृष्ट्यं तदातरम् ॥ ३८ ॥

कदाचित् आप मेरे पास से किसी वस्तु के लेने की इच्छा से मुझे पार करने की इच्छा न करते हों तो हे प्रभो ! मैं तो संसार में प्रसिद्ध निर्धन हूँ ! अतः मैं आपको क्या दूँ ? तथापि इच्छा हो तो इस मेरे तुच्छ लृष्ट्य को डिराये में ले लें ॥ ३८ ॥

स दैत्यसूनूर्वलतः कृशानोः सुरक्षितोभूद्यथा यथा सा ।
क्व याधुनागाद् रघुवंशनाथ ! इमे ममाभाग्यलतस्य लन्त ? ॥ ३९ ॥

हे श्रीरघुवंशनाथ ! जलती हुई आग में से जिस दया से आपने प्रलवाह की रक्षा की थी, लन्त ! वह दया मुझ अभाग्य के समय कहाँ खली गयी ? ॥ ३९ ॥

गुणैः पदं ते गुणिनो लभन्ते समर्थया वा तव राधवेन्द्र ।

भवाम्बिबाधाप्रसिताः परं ते क्वमादृशा भाग्यलताः प्रयान्तु ॥ ४० ॥

हे श्रीराधवेन्द्र ! गुण्णीजन आपके पद को गुणों के द्वारा अथवा तो आपके पूजन के द्वारा प्राप्त होते हैं, परन्तु संसारसागर के दृष्णो में कूसे लुभे मेरे जैसे भाग्यहीन कहाँ जावें ? ॥ ४० ॥

अपार संसार विषाडिदंशसंमूर्छितस्य श्रयतो मूर्ति वा ।

श्रीरामनामाक्षरयुग्ममीड्यं मतः प्रशस्तो विषवैद्य एव ॥ ४१ ॥

हे भगवन् ! अपारसंसाररूप विषैले सर्प के दंश से मूर्छित अथवा मरण को प्राप्त होते लुभे जन के लिये आपके नाम के स्तुत्य हो अक्षर ही प्रशस्त विषवैद्य है ॥ ४१ ॥

साकेतपुर्यां तव रामयन्द्र ! वरं कुरङ्गोऽथ भगो मृगो वा ।

प्लक्ष्मादिवृक्षोऽपि वरं परं नो त्वद्देशविशेषवतो नृपत्वम् ॥ ४२ ॥

हे श्रीरामयन्द्र ! आपकी साकेतपुरी में भग, मृग और तो क्या, प्लक्ष्मादि वृक्ष छोकर रहना भी अच्छा है, परन्तु आपके देश से पृथक् रहनेवाले की नृपता भी अच्छी नहीं है ॥ ४२ ॥

यदा यदा यत्र कृतानुसारल्लभेय जन्मानि य यानि यानि ।

तदा य तत्र त्वयि तेषु तेषु सन्तिष्ठतां भक्तिभरः सदा मे ॥ ४३ ॥

हे भगवन् ! स्वकर्मों के अनुसार जहाँ जो जन्म पाऊँ वहाँ उस जन्म में सर्वदा आप में मेरी अत्यन्त भक्ति भनी रहे ॥ ४३ ॥

न यास्ति किञ्चित्सुकृतं कृतं मे न भक्तिसेवा न य भक्तसेवा ।

निसर्गजा नाथ ! कृपैव तेऽद्य ममावलम्बोऽस्ति न किञ्चिदन्यत् ॥ ४४ ॥

हे नाथ ! मैंने कोई उत्तम कर्म नहीं किया है, भक्ति भी नहीं की है, तथा आपके भक्तों की सेवा भी नहीं की है ।

अतः निर्लेतुकी आपकी कृपा ही केवल मेरा अवलम्ब है, अन्य कुछ नहीं ॥ ४४ ॥

कदापि सोढे स्वजनस्य दृःभं त्वया न हे भक्तशिवप्रयत्न ! ।

न वेसि किं कारणमद्य यन्मामुपेक्षसे दीनतमं तमोद्ग ! ॥ ४५ ॥

स्वभक्तों के कल्याण करने के प्रयत्नवाले हे प्रभो ! आपने कभी भी स्वजनों के दृःभ को नहीं सहन किया है, परन्तु मैं नहीं जानता कि क्या कारण है ? जो हे तमोद्ग ! मुझ अत्यन्त दीन की उपेक्षा आप कर रहे हैं ॥ ४५ ॥

परीक्षसे येत्तु निवेद्यामि यत् किं नाथ दासस्य परीक्षायां स्यात् ।

प्रयत्नरोगार्दितमानसस्य तनौ क्षुरक्षेपाणामीदृशं किम् ? ॥ ४६ ॥

कदाचित् आप मेरी परीक्षा करते हों तो हे भगवन् ! मैं कलता हूँ कि दास की भी कहीं परीक्षा की जाती है ? हे नाथ ! भयङ्कर रोगों से व्यथित पुरुष के शरीर में कहीं छुरा मारा जाता है ? आपकी यह परीक्षा करना, अत्यन्त रोगी के शरीर में छुरा भोंकना जैसा ही है ॥ ४६ ॥

माता पिता वा तनया विनेयास्तन्वन्ति साहाय्यमि मे न दुःखे
 अेतच्छ्रुतं याप्यनुभूतमेतत्परं तवौदास्यमतीव बाधते ॥ ४७ ॥

डे नाथ ! यड तो मैने सुना डै कि दुःख में माता, पिता, पुत्र और सेवक आदि सहायता नडीं करते । ँसका अनुभव
 भी किया डै, परन्तु डे नाथ ! आपकी उदासीनता मुझे अत्यन्त पीडित कर रही डै ॥ ४७ ॥

कुर्वन्तु कामं भवबन्धबद्धा प्रेमाधिवीक्ष्यैव गुणान्श्च कांश्चित् ।
 किन्तु त्वदीये लृष्टये कथं मे मडामडेशास्ति गुणैकाणैरुखा ? ॥ ४८ ॥

डे नाथ ! जो सांसारिक बन्धनों से बंधे डुअे डै, वे भले डी किन्डीं गुणो को देखकर प्रेम करें, परन्तु डे सर्वेश्वर !
 आपके लृष्टय में मेरे गुणों के देखने की उखा ड्यों लुई डै ? ॥ ४८ ॥

वित्तं मतिर्भक्तिरुदारवृत्ते तिष्ठेन्मयि द्वारि तवाधिवासः
 सेव्येत किं नाथ मया सुभेन द्वारा तथैवास्य जनस्य मोक्षः ॥ ४९ ॥

यदि धन, बुद्धि और भक्ति मुझ में डोती तो डे उदारवृत्तिवाले नाथ ! आपके द्वार पर मैं ड्यों निवास करता ? धन
 आदि के द्वारा डी सुखपूर्वक ँस जन का मोक्ष डो जाता ॥ ४९ ॥

यदि प्रभुत्वं रघुनाथ तेऽपि सन्तिष्ठते भक्तगुणानपेक्ष्य ।
 तदा कथं ते भवरोगभिन्नः समाश्रयेत्कोपि पदारविन्दम् ॥ ५० ॥

डे श्रीरघुनाथ ! यदि आपकी प्रभुता भी भक्तों के गुणों की अपेक्षा से डी डै तो संसाररूप रोग से डुःभित कोई भी
 आपके यरणकमल का आश्रय ड्या लेगा ? ॥ ५० ॥

विलोडय डेऽपीड पदारविन्दे समुल्लसन्तं तव पारिजातम् ।
 त्वामाश्रयन्ते परमेष दासो दयानिधे दीनतया प्रपन्नः ॥ ५१ ॥

डे दयानिधे ! कितने डी जन आपके यरणकमल में कल्पवृक्ष को देखकर (लोभ से) आपका आश्रय लेते डै, परन्तु
 यड दास तो डेवल दीनता के कारण डी आपको प्राप्त लुआ डै ॥ ५१ ॥

श्रीस्वस्तिकं स्वस्तिकरं निरीक्ष्य त्वत्पादकञ्जे त्वयि भावपूर्णाः ।
 लोभास्य डेवित् परमेष दासो दयानिधे दीनतया प्रपन्नः ॥ ५२ ॥

डे दयानिधे ! कल्याण करने वाले स्वस्तिक चिह्न को आपके यरणकमल में देखकर लोभ से डी कितने डी आपकी
 भक्ति करते डै, परन्तु यड दास दीनभाव से डी आपके यरणों में प्राप्त लुआ डै ॥ ५२ ॥

रमारमण ! श्रीकमलामभीप्सुः प्रपद्यते त्वामिड कोऽपि नाथ !
 अयं जनस्ते तु पदारविन्दरजोभिलाषापलूतस्तवाग्रे ॥ ५३ ॥

હે રમારમણ ! કિતને હી તો લક્ષ્મી-ધન કી ઇચ્છા સે હી ઇસ સંસાર મેં આપકો પ્રાપ્ત હોતે હૈં, પરન્તુ યહ જન તો આપકે ચરણ-કમલ કે રજ કી ઇચ્છા સે મોહિત હોકર આપકે સમ્મુખ પ્રાપ્ત હુઆ હૈં ॥ ૫૩ ॥

વૃથૈવ તં કલ્પતરં બિભર્ષિ ન કલ્પસે કલ્પયિતું મહેશ !

યદિ પ્રપન્નસ્ય તવાઘ્નિયુગ્મં તનોર્વિનાશં ભવસાધ્વસસ્ય ॥ ૫૪ ॥

હે રમેશ ! યદિ આપ અપને ચરણોં મેં પ્રપન્ન પુરુષ કે સંસાર-ભય કે નાશ કરને મેં સમર્થ નહીં હૈં તો વૃથા હી કલ્પવૃક્ષ કો ક્યોં ધારણ કરતે હૈં ? ॥ ૫૪ ॥

વર્ષિષ્ણુ પાપોપનન્ત જનસ્ય દુઃખં નિહન્તું ક્ષમતા ન તે ચેત્ ।

વૃથા પ્રયાસાય ઘ્યાનિઘે કિં દ્વાભ્યાં ધૃતાભ્યાં નુ ધનુઃ શરાભ્યામ્ ॥ ૫૫ ॥

હે ઘ્યાનિઘે । યદિ આપ સ્વજન કે બઢ્ેને વાલે પાપોં સે પ્રાપ્ત દુઃખ કો નષ્ટ કરને કા સામર્થ્ય નહીં રખતે હૈં તો વ્યર્થ મેં પરિશ્રમ માત્ર કે લિએ ઇન ધનુષ ઔર બાણોં કો ધારણ કરને સે ક્યા લાભ હૈં ? ॥ ૫૫ ॥

નિરીક્ષ્ય હે દક્ષિણ ! દક્ષિણે તે ભુજે સુવકં ધનુરેતદેવમ્ ।

આશા વિચાયૈવ ન મુગ્ધતીમં જનં પતેદત્ર કદાપિ દૃષ્ટિઃ ॥ ૫૬ ॥

હે પરમ ચતુર ભગવન્ । આપકે દક્ષિણ ભુજ મેં ટેઢ્ે-બાંકે ઇસ ધનુષ કો દેખકર આશા, યહ વિચાર કર હી મુઝ કો નહીં છોડતી હૈં કિ કદાચિત્ કભી ઇધર ભી દૃષ્ટિ હો જાવે । અર્થાત્ જબ ઇતને ટેઢ્ે ધનુષ કો આપ ઉઠાયે રખતે હૈં તો મેરે જેસે ટેઢ્ે આપકો ભાર ન હોંગે ? ॥ ૫૬ ॥

તવ પ્રકુલ્લામલપદ્મજાધિરસપ્રપાનભ્રમરે મનો ભેં ।

શ્રિયઃ પતે ત્વં સતતં કુરુષ્ય નાતોડન્યથાસ્તે મમ કાચિદિચ્છા ॥ ૫૭ ॥

હે શ્રીપતે ! આપ મેરે મન કો સદા અપને વિકસિત સુન્દર કમલચરણ કે રસ કા પાન કરનેવાલા ભ્રમર બનાઇયે, ઇસસે અન્ય મેરી કુછ ભી ઇચ્છા નહીં હૈં ॥ ૫૭ ॥

પ્રાજ્યં સુરાજ્યં ન ચ કામયેડહં સ્વરાજ્યમપ્યાકલયે તૃણાનિ ।

ત્વત્પાદપાથોજરજઃ કણાય સ્મૃહા મનસ્યઘ મમ સ્ફુરન્તુ ॥ ૫૮ ॥

હે પ્રભો ! મૈં બડ્ેા ભારી સુન્દર રાજ્ય નહીં ચાહતા હૂં । સ્વર્ગ કે રાજ્ય કો ભી મૈં તૃણ સમાન હી માનતા હૂં । મેરે મન મેં તો કેવલ આપકે ચરણકમલ કે રજ કણ કી સર્વદા ઇચ્છા જાગતી રહે, યહી મેરી ઇચ્છા હૈં ॥ ૫૮ ॥

જગત્પતેડહં જગદાપદાભિર્દુરન્તદુર્બન્ધનબદ્ધયેતાઃ

કદા વિભુક્તો નુ વિપદ્ધિયુક્તસ્ત્વત્પાદસાન્નિધ્યમજસ્ત્રમીશે ॥ ૫૯ ॥

હે જગન્નાથ ! સંસાર કી અપત્તિયોં કે દુરન્ત દુષ્ટ બન્ધન સે બંધે ચિત્તવાલા, નાના વિપત્તિયોં સે છૂટકર, મુક્ત હોકર, નિરન્તર આપ કે ચરણકમલ કી સમીપતા કો મૈં કબ સેવન કડંગા ? ॥ ૫૯ ॥

વૃથા કથા માસ્તુ તવાનનાબ્જ વિનિઃસૃતા યાડભયદા જનેભ્યઃ ॥

अतो दुरन्ताय जनाय मख्यं प्रसाददृष्टिं वितराशु नाथ ! ॥ ६० ॥

डे नाथ ! आपडे मुभकमल से निकला डुआ स्वजनों को अभयप्रद वचन व्यर्थ न डो, ँसडे लिये मेरे जैसे परम
दुःखी जन पर शीघ्र कृपादृष्टि करिये ॥ ६० ॥

न मादृशं येद्विविधाधपुञ्ज निकुञ्जमध्ये विडरन्तमङ्गाम् ।
करोषि पूतं रघुनन्दनाशु किं पावनत्वं तव पापिनां भोः ॥ ६१ ॥

डे श्रीरघुनन्दन ! यद्वि नाना प्रकार डे पाप समूह डे कुञ्जों में विडार करते डुअे मेरे जैसे अङ्ग को आप शीघ्र पवित्र
नडी करते हैं तो आप में पतित पावनता क्या है ? ॥ ६१ ॥

जाग्रज्जगज्जालमडेन्द्रजाल विभ्रान्तबुद्धि रघुवंशनाथ ।
करो गृडाणाशु दयां विधाय समुद्धर प्रापय धाम नैजम् ॥ ६२ ॥

डे श्रीरघुवंशनाथ ! प्रस्तुत जगज्जालरूप मडेन्द्रजाल से भ्रान्त बुद्धि वाले मेरे डाय को शीघ्र पकडःिये । दया
करके मेरा उद्धार कीजिये और अपने धाम में ले चलिये ॥ ६२ ॥

त्वत्पादकञ्ज प्रसृताधिरस्यरसं पिबन्तं तु मनोद्विरेकम् ।
मडामडोमोडमतङ्गजोडयं प्रपीडयन्नाथ निवारणीयः ॥ ६३ ॥

डे नाथ ! आपडे चरणकमल से निकले डुअे स्वाद्विष्ट रस को रसपान करते डुअे मेरे मनरूप भ्रमर को, मडो उत्साडी
मोडरूप गज पीडःित कर रडा है । ँसे दूर भगाँअे ॥ ६३ ॥

तवासिमार्गे व्रजतो जनस्य तवैव माया परिपन्थितायाः ।
पदं समेत्य भ्रमयत्यजस्रं जनं ततस्तां कुरु नाथ दूरम् ॥ ६४ ॥

आपकी प्राप्ति डे मार्ग में जाते डुअे जनों को आपकी माया डी वैरिणी बनकर निरन्तर धुमाती है, अतः ँसे दूर
करिये ॥ ६४ ॥

न मोडमामोडसि कदापि तस्मात्तज्जन्ममीशेषदपीड दुःखम् ।
न वेत्सि, यो यन्न च वेत्ति तस्य कथं मडत्वं स बुधोषि वेत्तु ॥ ६५ ॥

डे ँश ! आप कभी भी मोड की प्राप्ति नडी डुअे हैं, अतः मोड डे थोडःे से भी दुःख को आप नडी जानते । जो
जिसे नडी जानता है वह विद्वान् डो तो भी ँसडे मडत्त्व को कैसे जान सके ? ॥ ६५ ॥

जगत्पितृत्वं तव देवदेव जगत्प्रसिद्धं जगतां मडेश !
संपालनादेव ततः पृथक्त्वं पृथक्करिष्यत्यशं ततस्त्वाम् ॥ ६६ ॥

डे देवों डे भी देव ! जगत् डे पालन करने से डी जगत्-प्रसिद्ध आप जगत्पिता कडे जाते हैं । तब जगत् डे पालन
का पार्थक्य आपको जगत्पिता डे पद से अवश्य पृथक् करेगा ॥ ६६ ॥

ભવોદ્ભવોદ્ભીતિભરપ્રરૂઢ પ્રચણ્ડચણ્ડાંશુમયૂખતમઃ ।

ત્વત્પાદ સત્પાદપમાશ્રિતોસ્મિ કથં ન રક્ષસ્તવ તજ્જનોડયમ્ ॥ ૬૭ ॥

હે ભગવન ! સંસાર કે ભયરૂપ પ્રચંડ સૂર્ય કી કિરણોં સે તપે હુએ મૈને આપકે ચરણરૂપ સુન્દર વૃક્ષ કા આશ્રય લિયા હૈ, અતઃ યહ જન આપકા રક્ષ્ય ક્યોં નહીં હૈ ? ॥ ૬૭ ॥

આધ્યાયતસ્ત્વાં પરિહાય સર્વમુપેક્ષિતસ્યાપિ ન મેડસ્તિ જ્ઞાનિઃ ।

ત્વમેવ સર્વેષુ જનેષુ તાવદ્ધાસ્યાસ્પદં સંપ્રજિતાસિ નૂનમ્ ॥ ૬૮ ॥

હે દીનબન્ધો ! સબ કુછ છોડઃકર કેવલ આપકા હી ધ્યાન કરતે હુએ તથાપિ ઉપેક્ષિત મેરી તો કુછ ભી હાનિ નહીં હૈ, પરન્તુ આપ હી સર્વજનોં કે બીચ મેં હાસ્યાસ્પદ બનેંગે ! ॥ ૬૮ ॥

ગુણાનુપશ્રુત્ય તવાન્તિકં મે સમાગતસ્યાથ નિવર્તિતસ્ય ।

ગતિર્ભવિત્ કા નુ પરં ત્વમાસ્યં કથં પ્રભો દર્શયિતાસિ ભૂષુ ॥ ૬૯ ॥

આપકે ગુણોં કો સુનકર આપકે પાસ મૈં આયા । અબ મૈં લૌટ જાઊં તો ઇસમેં મેરી ક્યા ગતિ હોગી ? પરંતુ હે નાથ ! આપ અપને ભક્તોં મેં કેસે મૂંહ દિખાયેંગે ? ॥ ૬૯ ॥

પરં કઠોરં હૃદયં સ્વભક્તં રઘૂત્તમસ્યાસ્તિ નિરાકરિષ્ણોઃ ।

એવં પરીવાદ વિવર્ણજાલં તતઃ કથં રોત્સ્યસિ વિશ્વનાથ ॥ ૭૦ ॥

સ્વભક્ત કો નિરાકરણ કરનેવાલે શ્રીરઘુનાથજી કા હૃદય બહુત કઠોર હૈ, ઇસ પ્રકાર સે નિન્દાવચન કો હે વિશ્વનાથ ! આપ કેસે નિવૃત્ત કરેંગે ? ॥ ૭૦ ॥

સકૃત્પ્રપન્નાય જનાય નિત્યં દદામ્યભીતિ નિતરામિતીશ ।

વદન્તમારભ્ય ન પાલનત્વાદ્ વચશ્ચ્યુતં ત્વાં વદ વિશ્વસેત્ કઃ ॥ ૭૧ ॥

એક બાર ભી જો કોઈ મેરા પ્રપન્ન હોતા હૈ, મૈં ઉસે સર્વદા અભયદાન દેતા હૂં, ઇસ પ્રકાર સે કહનેવાલે તથા મેરી રક્ષા ન કરને કે કારણ અપને વચન સે ચ્યુત હુએ આપકા હે નાથ ! ભલા આપ હી કહિયે, આજ સે કૌન વિશ્વાસ કરેગા ? ॥ ૭૧ ॥

યમં વશીકૃત્ય પદારવિન્દં સ્થિતં સદા સંસ્મરતશ્ચ પુંસઃ ।

કા નામ લોકેશ્વર તાવકસ્ય પ્રોદેતુ ભીતિસ્તુ પરેતમર્તુઃ ॥ ૭૨ ॥

યમરાજ કો ભી અપને વશ મેં રખને વાલે આપકે શ્રી-ચરણોં કો સ્મરણ કરને વાલે જનકો, હે લોકેશ્વર ! યમરાજકા ક્યા ભય હો સકતા હૈ ? ॥ ૭૨ ॥

નિરદુશં મે વિચરન્મ નઃત્વં દયાનિધે પાદસરોજમધ્યે ।

સ્થિતં ગૃહીત્વાદુશમદ્ય સઘો હિતાય મે નાથ વશીકુરુષ્વ ॥ ૭૩ ॥

हे ध्यानिधे ! मेरा मन निरंकुश छोकर धर-धर लटक रहा है । आपके चरणकमल में जो अङ्कुश है उसे लेकर मेरे छित के लिये हे नाथ ! मेरे मन को वश में कर दीजिये ॥ ७३ ॥

त्वत्पादपाथोजरथस्थितं तं वाञ्छत्यदः सङ्कमितुं मनो मे ।
अश्रं ततो व्युत्कमलां विधातः पदेन ते ताडय दीनबन्धो ! ॥ ७४ ॥

हे दीनबन्धो ! आपके चरण कमल में जो रथ के साथ घोडा-घोडा हुआ है, मेरा मन उस घोड़े के वेग को अतिक्रमण करने की इच्छा कर रहा है । अतः हे नाथ उसीसा व्युत्कमल-अनुचित कार्य करने वाले उस मेरे मन को अपने चरण से ताडन कीजिये ॥ ७४ ॥

नागं प्रभो सन्दिश पादकञ्जस्थितं मनोमारुतमद्य मेऽसौ ।
पिबत्वजस्रं च ततो विमुक्तः सुप्तं प्रयाणं पथि ते करोमि ॥ ७५ ॥

हे प्रभो ! आपके चरणकमल में जो नाग विराजमान है, उसे आज्ञा दीजिये कि वह मेरे मनरूप वायु को पी जावे, जिससे कि उस दृष्ट से छूटकर आपके मार्ग में सुप्तपूर्वक प्रयाण कर सकूँ ॥ ७५ ॥

त्वत्पादकञ्जं न नरः स्पृशेत्स्येत् संस्थापितः किं चरणो नरोऽसौ ।
त्वं येत्कश्चिस्थथ पक्षपातं न्यायः क्व नेयो भगवंस्त्वयाऽसौ ॥ ७६ ॥

हे भगवन् ! कदाचित् आप यह कहें कि आपके ली चरणों के स्पर्श करने का मनुष्य अधिकारी नहीं है तो बताइये कि अपने चरण में उस नर को क्यों बैठा रभा है ? प्रभो ! यदि आप ही पक्षपात करेंगे तो न्याय को आप कहां भेजेंगे ? ॥ ७६ ॥

षडेव मे वैशिष्ये उल्लसन्ति लसन्ति ते नाथ पदेऽष्ट कोणाः ।
प्रत्येकमेकैकमभिक्षिपेथाः शिवं मम स्यात् तव कोणापूर्तिः ॥ ७७ ॥

हे नाथ ! मेरे तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य केवल यह छः ही शत्रु हैं और आपके चरणकमल में आठ कोण हैं । तो हे नाथ ! मेरे एक-एक शत्रु को एक-एक कोने में डाल दीजिये न ! इससे मेरा तो कल्याण हो जावेगा और आपके भाली पड़ेंगे दुःखे कोने भर जावेंगे ॥ ७७ ॥

उलं तवाङ्घ्रिस्थमये मडेश कृषत्वघक्षेत्रमवोप्य नाथ ।
नेत्राश्रुवाभिस्तव भक्तिबीजं सिञ्चामि मोक्षाप्यङ्गलं युटेतु ॥ ७८ ॥

हे मडेश ! आप अपने चरणकमल में स्थित हल को मेरे पाप-क्षेत्र को जुतने दीजिये । जुत जाने पर उसमें भक्ति-बीज बोकर नेत्राश्रु जल से उसे मैं सींचूँगा । उसमें से मुझे मोक्षफल मिलेगा ॥ ७८ ॥

संसारसंसारजलप्रवाहे पतन्निमज्जामि रघुप्रवीर ।
पदस्थितेन स्वशरेण तं त्वं विशोष्य पापापल पाडि दासम् ॥ ७९ ॥

अत्यन्त वेग से चलनेवाले संसार जलके प्रवाल में पडःा हुआ मैं डूब रहा हूँ । हे रघुप्रवीर ! आपके चरणों में जो बाण हैं, उससे जैसे लड्डुगमन समय में समुद्र को सुभाया था, वैसे ही सुभाकर मुझ दास की रक्षा करिये ॥ ७९ ॥

न कामयेऽहं भणिमएऽपं ते निवासतेतो रघुवंशवीर ।
तत्केवलं त्वच्चरणारविन्दं प्रकामये सञ्चलदृत्पाताकम् ॥ ८० ॥

हे रघुवंशवीर ! मैं अपने निवास के लिये आपका भणि-मएऽप नहीं चाहता हूँ । मैं तो केवल उस चरणकमल को चाहता हूँ जिसमें सञ्चल लम्बी पताका उडः रही है ॥ ८० ॥

यदा यदा धावति नाथ तेऽयं दासस्त्वदर्थं तु कलिस्तद्वेगम् ।
रुणद्धि रुन्ध्यध मुसल्यमेनमथोग्रतस्त्वच्चरणस्थितेन ॥ ८१ ॥

हे नाथ ! जब-जब यह आपका दास आपके लिये दौडःता है, तब-तब वह कलि इसे रोकता है । हे भगवन् ! यह मूसल से मारने योग्य है और आपके चरण में मूसल विराजमान है, अतः उसे लेकर इस कलि को रोकिये ॥ ८१ ॥

त्वत्पादकञ्जस्थितमेतदब्जं निरीक्ष्य लीलं स्युडयालु जातम् ।
मनो मदीयं रघुनाथ ! तत्त्वं रन्तुं तदाज्ञापय दीर्घकालम् ॥ ८२ ॥

हे श्रीरघुनाथज ! आपके चरणकमल में स्थित कमल को देखकर सञ्चल मेरा मन लोभी बन गया है । अतः हे प्रभो ! दीर्घकाल तक धेने के लिये उस कमल को इसे दे दीजिये ॥ ८२ ॥

कार्पाण्यमित्थं वडसे किमघ लोकोत्पवित्रीं सरयूं पदे स्वे ।
संस्थाप्य नालोकयसे च पादं कथं जनेष्वास्तं ययान् प्रकीपः ? ॥ ८३ ॥

हे भगवन् ! आप धने कृपाण क्योँ डो गये हैं ? जगत को पवित्र करनेवाली श्रीसरयूज को चरण में रख लिया है और भक्तों को उनका दर्शन भी नहीं करने देते हैं । स्वजनों के डपर धतना अधिक कोप क्योँ है ? ॥ ८३ ॥

वडो वसत्यत्र विधू रमेश ! वामे पदे तस्य च साडयय्यात् ।
वडत्वमेतत्तव तत्स्वभावे सड्कान्तमेतदधि तर्हि चित्रम् ॥ ८४ ॥

हे भगवन् ! आपके वामचरण में द्वितीया का वक्यन्द् रहता है । उसके संसर्ग में यदि आपके उस मधुर और सरल स्वभावमें वडता आ गयी डो तो बडःा आश्चर्य है ? ॥ ८४ ॥

सर्वसड्हा पादमुपास्य देव ! वसुन्धरा तिष्ठति तावतापि ।
सर्वसड्त्वं सडसे न येत्त्वं डतास्तदा मादृश अवे नाथ ॥ ८५ ॥

हे देव ! सब कुछ सडन करनेवाली भगवती वसुन्धरा आपके चरण में निवास करती है तो भी आप सर्वसड नहीं डोते हैं । मेरे जैसे अपराधियों को नहीं सडते हैं ? तब तो हे नाथ मेरे जैसे डीन तो मारे गये ! ॥ ८५ ॥

वीणो प्रवीणासि निरञ्जनस्य पादौ स्थिता रञ्जयितुं जनानाम् ।

मनांसि तस्मिन्त्वमपीड मेऽद्य मनः प्रसादाय न यत्नशीला ॥ ८६ ॥

निरञ्जन भगवान् के यरण में रहनेवाली छे वीणो ! तुम भक्तजनों के चित्तों को रंजन करने में बऽी प्रवीणा छो । तो भला तुम भी आज मुज जन को प्रसन्न करने के लिये यत्न क्यौं नही करती छो ? ॥ ८६ ॥

कोधश्च कामश्च मद्यश्च लोभो मोहश्च मात्सर्यमये प्रभोऽद्य ।

स्थिताः समादाय यमूं रणाय कुर्यां य किन्नाथ गदान्विताऽङ्घ्रे ॥ ८७ ॥

छे नाथ ! काम, कोध, लोभ, मोह, मद्य और मात्सर्य ये सब आज अपनी सेना लेकर युद्ध के लिये भऽो छैं । छे यरणों में गदावाले भगवन् ! कछिये क्या करुं ? ॥ ८७ ॥

संसारलालाडलमद्य पीत्वा भ्रिये जगन्नाथ न पासि येत्वम् ।

किं स्यात् त्वदीयाऽङ्घ्रिसरोजगेनाभूतेन येत्ते स्वजना भूताः स्युः ? ॥ ८८ ॥

छे जगन्नाथ ! यहि आप नही रक्षा करते तो मैं आज संसार रुपी विष को पीकर मरता हूँ । परन्तु छे प्रभो ! यहि आपके भक्त जन मर जावें तो आपके यरणों में रहूँ अमृत का क्या उपयोग छोगा ? ॥ ८८ ॥

वंशीविभूषामखिताञ्जपाद मद्दृष्टिघाटापथमेत्य राम !

विडारमाडारथ तेन नित्यं सुभं दृशोर्मैऽतिसुभं तवापि ॥ ८९ ॥

छे वंशी से शोभित यरणवाले प्रभो ! श्रीराम ! मेरे नेत्ररूप राजमार्ग में आकर विडार करिये । छससे मेरे नेत्रों को भी सुभ मिलेगा और आपको भी ॥ ८९ ॥

अडो मया यानि कृतान्यघानि न तानि सम्मान्ति मयि प्रभोऽद्य ।

संस्थापनार्थं मम नाथ तेषां घटं पदस्थं कृपया प्रदेहि ॥ ९० ॥

छे भगवन् ! मैंने जितने पाप किये छैं वड अब मुज में समाते नही छैं । अतः आपके यरण में जो घट छै उसे उन्हे रभने के लिये कृपया दीजिये ॥ ९० ॥

अथापि सन्धेक्षि न तान्यघानि मास्यन्ति तत्रेति तदा दयातः ।

कुण्डं प्रदेहि स्वपदाञ्जसंस्थं ङोष्यामि तत्रैव समानि तानि ॥ ९१ ॥

कदाचित् आपको यड सन्देह छो कि मेरे पाप उस घट में भी नही समावेंगे तो छे मडाराज ! अपने यरणस्थ कुण्ड को दे दीजिये । उसी में मैं सब पापों का डोम कर दूँगा ॥ ९१ ॥

त्वत्पादमूलं समुपेत्य नाथ ! सीदामि येदादिश दीनबन्धो ! ।

प्रजानि कुत्राशरणः शरण्य ! कियद्विषीदामि विषण्णयेताः ॥ ९२ ॥

छे दीनबन्धो ! आपके यरणों में भी आकर यहि मैं दुःखी छोता हूँ तो छे शरण्य ! आप बताइये कि अशरण्य मैं कडा जाऊँ? दुःखित चित्तवाला कब तक दुःखी छोता रहूँ ? ॥ ९२ ॥

कृपां कृपानाथ तथा विधेहि क्षणार्धमप्यस्तु मनो यथा मे ।

न त्वत्पदाब्जस्मरणं विना न त्वदीयनामस्मरणं विना वा ॥ ८३ ॥

हे कृपानाथ ! औसी कृपा करिये कि मेरा मन आधा क्षण भी आपके चरण और नामके स्मरण बिना न रहे ॥ ८३ ॥

विलोक्य दीर्घशोर्बलु निष्ठुरत्वं तावाशु मुञ्ज्वा रघुवीरपाटी !

प्रपन्नरक्षापरिबद्धबुद्धी युवां श्रये रक्षतमाशु दासम् ॥ ८४ ॥

हे श्रीरामज्जु के युगलचरण ! मैं भगवान् के ढाँथों की निष्ठुरता देखकर, उन्हें छोड़कर, प्रपन्नजनों की रक्षा करने वाले आपका ही आश्रय लेता हूँ । इस दास की शीघ्र रक्षा करें ॥ ८४ ॥

हे राम ! बाहु मम रक्षणार्थमुत्थापयेवां न य वा परन्तु ।

चरणाम्भोजस्थरजः प्रदाने श्रमोऽस्मि को नाम कृपानिधान ॥ ८५ ॥

हे श्रीरामज्जु ! मेरी रक्षा के लिये अपना बाहु आप उठावें या न उठावें परन्तु हे कृपानिधान ! अपने चरणकमल के रज देने में आपको क्या श्रम होता है ? ॥ ८५ ॥

त्वं दीनबन्धुस्त्वयमस्ति दीनः कृपापरस्त्वं दयनीय शेषः ।

त्वं रक्षकश्चैष तवास्ति रक्ष्यः कस्तद्विलम्बे जगदीश ! उेतुः ॥

हे जगदीश ! आप दीनबन्धु हैं और मैं दीन हूँ । आप कृपालु हैं और मैं कृपा का पात्र हूँ । आप रक्षक हैं और मैं रक्ष्य हूँ, तब विलम्ब का क्या उेतु है ? ॥ ८६ ॥

हे रामउस्तौ श्रुणुतं वयो मे युवां तु धत्थः सशरं हि यापम् ।

पादौ तु लक्ष्मीमथ पारिजातं सुदर्शनं शेषशराम्बरं य ॥ ८७ ॥

ततोऽभिमानी युवयोः सुबाहु नित्यं य वामेव शिवाय भूयात् ।

प्रयोजनं मे तु परं पदाभ्यां कदाप्यपेक्ष्यो न भवामि ताभ्याम् ॥ ८८ ॥

हे श्रीरामज्जु के दोनो बाहु ! मेरी बात सुनिये ! आप तो केवल धनुष और बाण धारण करते हैं और चरण तो लक्ष्मी, कल्पवृक्ष, शेष, शर, अम्बर आदि अनेक उत्तम वस्तुओं को धारण करते हैं ॥ ८७ ॥

अतः हे बाहु ! आपका थल अभिमान आपके ही कल्याण के लिये हो । मुझे आपकी आवश्यकता नहीं है । मुझे तो केवल भगवान् के चरणों से प्रयोजन है और वे मेरी उपेक्षा न करेंगे ॥ ८८ ॥

कृतो वडेथे नु वृथाभिमानं कदापि कञ्चिन्न तारयित्वा ।

अनन्तपारानधमान् क्षणेन मौनं समुद्धार्य पदो जयेताम् ॥ ८९ ॥

डे श्रीरामबाहु ! कभी किसी को भी तारे बिना धतना व्यर्थ का अभिमान आप क्यों धारण करते हैं ? जय हो उन थरशों का, जिन्होंने अनन्त अधमजनों को क्षण भर में पार कर दिया तो भी मौन बेठे हैं ॥ ८८ ॥

भक्तरीरुपालम्भगिरो निशम्य क्षणं विडस्यैव भयानुवृत्तिम् ।
अपाडरञ्छ्रीडरिरेष उस्तसमुद्रया सञ्चयतादृशस्त्रम् ॥ १०० ॥

भक्त के इस प्रकार के उपावम्भ के वचनों को सुनकर उंसकर, भय के आगमन को उस्तमुद्रा से दूर करते हुये भगवान् श्री रामञ्चु सर्वदा विजयी रहें ॥ १०० ॥

स्तोत्रं पवित्रं रघुपुङ्गवस्य प्रेम्णाऽसकृद्वापि सकृत्पठेद्यः
सद्भ्राम धामाधिगतः स तस्य पुनर्न संसारपथं प्रयाति ॥ १०१ ॥

इस पवित्र स्तोत्र को यदि कोठ अेक बार भी प्रेम से पढः लेगा तो वह परमपवित्र तेजवाले भगवद्भ्राम में प्राप्त होकर पुनः संसार में न आयेगा ॥ १०१ ॥

॥ इति श्री परमउंसपरिब्राजक जगद्गुरु रामानन्दाचार्यैः स्वामि श्रीभगवदाचार्य मडाराजैः १८८४ तमे विङ्कमसम्बत्सरे प्रणीतः प्रपन्नकल्पद्रुमः समाप्तः ॥

Encoded and proofread by Mrityunjay Pandey

—
Prapannakalpadrumah

pdf was typeset on February 16, 2024

—

Please send corrections to sanskrit@cheerful.com

